सामाजिक संरचना व विसंगति या नियमहीनता
(Social Structure and Anomie)

सामाजिक संरचना व व्यक्ति के व्यवहार के बीच भी एक घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस तथ्य को समझाने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया है। उनका कथन है कि सामाजिक संरचना के स्वरूप या प्रकृति का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व व कार्यों पर पड़ता है क्योंकि व्यक्ति सामाजिक संरचना का ही एक अंग होता है। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी—इसीलिए यह हो सकता है कि व्यक्ति का व्यवहार इस रूप में प्रकट हो जैसाकि उससे आशा नहीं की जाती। इस अस्वाभाविक अवस्था या स्थिति को ही मोटे तौर पर 'विसंगति' की संज्ञा दी गई है।

दुर्खीम ने वास्तव में सर्वप्रथम 'एनोमी' की अवधारणा को विकसित किया। उनका कथन है कि सामाजिक संरचना या समाज का व्यक्ति पर केवल स्वस्थ प्रभाव ही नहीं अपितु अस्वस्थ प्रभाव भी पड़ता है और अस्वस्थ प्रभाव पड़ने पर व्यक्ति के व्यवहार में विसंगति या नियमहीनता देखने को मिलती है जिसकी कि चरम अभिव्यक्ति आत्महत्या है।

दुर्खीम की 'एनोमी' की अवधारणा को और भी सपष्ट करने का श्रेय **मर्टन** को है। आपका मत है कि परम्परागत विचारकों का यह मत गलत है कि व्यक्ति में इस प्रकार की कुछ प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं जोकि व्यक्ति को सामाजिक नियमों तथा निषेधों का उल्लंघन करने के लिए प्रेरित करती हैं। यही कारण है कि **लॉम्ब्रोसो** के इस मत से आज कोई भी सहमत नहीं है कि अपराधी जन्मजात होते हैं। मूल प्रवृत्तियों या प्राणिशास्त्रीय प्रेरणाएँ ही व्यक्ति के व्यवहारों का मूल या एकमात्र कारक हैं, इसे आज भी वैज्ञानिक आधार पर प्रमाणित नहीं किया जा सका है। अतः अगर मानव-व्यवहार

में कोई नियमहीनता या विसंगति देखने को मिलती है तो उसके कारण को केवल प्राणिशास्त्रीय या जन्मजात प्रवृत्तियों में ही न ढूँढ़कर अन्य सामाजिक सांस्कृतिक कारकों में भी खोजना चाहिए। **मर्टन** ने यही किया।

मर्टन के अनुसार जब सामाजिक संरचना की कोई असन्तुलित अवस्था व्यक्ति पर एक प्रकार का निश्चित दबाव डालती है और व्यक्ति सामाजिक आशाओं के प्रतिकूल आचरण करता है तो उस स्थिति को विसंगति कहते हैं। आपने आगे यह भी लिखा है कि जब सांस्कृतिक लक्ष्य तथा उन लक्ष्यों की प्राप्ति के संस्थागत साधनों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है तभी व्यक्ति का आचरण विसंगतिपूर्ण होता है। अर्थात् विसंगति सांस्कृतिक लक्ष्य व संस्थागत साधनों के बीच असंगति के फलस्वरूप उत्पन्न व्यक्ति के प्रतिकूल आचरणों की एक अवस्था है। **मर्टन** ने विसंगति की जो व्याख्या प्रस्तुत की उसका व्यक्ति के व्यवहार तथा सामाजिक सरचना के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों को समझने तथा उनका व्यवस्थित अध्ययन करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम के रूप में स्वागत किया गया। आपके अनुसार अभी हाल तक मनोवैज्ञानिक खोज के आधार पर यह विश्वास किया जाता था कि व्यक्तियों में इस प्रकार की प्राणिशास्त्रीय प्रवृत्तियाँ होती हैं जोकि पूर्ण सन्तुष्टि की माँग करती हैं; और इसी कारण वे समय-समय पर सामाजिक आदर्श-नियमों को मानने से इनकार कर देती हैं या उन नियमों का उल्लंघन करती हैं। इस प्रकार पहले यह विश्वास किया जाता था कि सामाजिक संरचना की माँगों को ठुकरा देने की प्रवृत्ति मानव की मूल प्रकृति में ही अन्तर्निहित है।

परन्तु सामाजिक विज्ञान में हाल ही में हुई प्रगतियों ने उपरोक्त विचार या सिद्धान्त को बदल दिया है। आज यह स्वीकार नहीं किया जाता कि सामाजिक प्रतिरोध या नियन्त्रण और प्राणिशास्त्रीय प्रवृत्तियों के बीच एक अविराम युद्ध की स्थिति बनी रहती है। प्राणिशास्त्रीय प्रवृत्तियाँ सभी समाज के सभी मनुष्यों में बहुत-कुछ समान ही होती हैं, तो क्या कारण है कि विभिन्न सामाजिक संरचना के अन्तर्गत समाज-विरोधी या आदर्श-विरोधी व्यवहार भी अलग-अलग प्रकार के होते हैं ? इसी से यह स्पष्ट है कि सामाजिक संरचना और इस प्रकार के व्यवहार के बीच कोई अविच्छिन्न सम्बन्ध अवश्य ही हैं यद्यपि आज भी हमें इस विषय पर बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त करनी बाकी रह गई है कि वे कौन-सी प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा सामाजिक संरचनाएँ उन परिस्थितियों को उत्पन्न करती हैं जिनमें सामाजिक संहिताओं का उल्लंघन एक 'स्वाभाविक' अर्थात् प्रत्याशित प्रत्युत्तर है। फिर भी **मर्टन** ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि किस भाँति कतिपय सामाजिक संरचनाएँ समाज के कुछ लोगों पर इस बात का दबाव डालती हैं जिसके फलस्वरूप वे अनुकूल नहीं अपितु प्रतिकूल आचरण करते हैं।

मर्टन के अनुसार सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचनाओं के विविध तत्त्वों में दो तत्त्व विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं—**पहला,** तो सांस्कृतिक लक्ष्य और **दूसरा,** संस्थागत आदर्श-नियम। ये सांस्कृतिक लक्ष्य सामान्य मानवीय भावनाओं तथा प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सबको प्रयत्नशील रहने का

निर्देश देते हैं। साथ ही प्रत्येक सामाजिक संरचना के अन्तर्गत इन सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति करने की कुछ निश्चित मान्य और स्थापित प्रणालियाँ होती हैं। इन्हीं को हम संस्था कहते हैं। ये संस्थाएँ इन लक्ष्यों की प्राप्ति के हेतु अपनायी जाने वाली प्रणालियों को परिभाषित, नियमित व नियन्त्रित करती हैं। सांस्कृतिक लक्ष्य व संस्थागत आदर्श-नियम संयुक्त रूप में मानवीय आचरणों की रूपरेखा निर्धारित करते हैं, परन्तु **मर्टन** के अनुसार इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि ये दोनों परस्पर एक-दूसरे से निरन्तर सम्बन्ध बनाए रखने में सफल होते हैं। हो सकता है कि कुछ लक्ष्यों पर संस्कृति का अधिक बल हो परन्तु उन लक्ष्यों की प्राप्ति के पर्याप्त संस्थागत साधन उपलब्ध न हों। ऐसी अवस्था में व्यक्ति उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे वैयक्तिक साधनों या प्रणालियों का प्रयोग कर सकता है जोकि समाज-विरोधी या आदर्श-नियमों के प्रतिकूल हों। इसका परिणाम विसंगति की स्थिति का पनपना है।

मर्टन ने लिखा है कि सामाजिक संरचना के इन दो पहलुओं अर्थात् सांस्कृतिक लक्ष्य तथा संस्थागत आदर्श-नियमों में एक क्रियात्मक सन्तुलन तब तक ही बना रहता है, जब तक कि सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के हेतु पर्याप्त व सामान्य संस्थागत प्रणालियाँ भी समाज के सदस्यों के लिए उपलब्ध हों। ऐसे समाज भी होते हैं जिनमें कि कुछ विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति पर तो अत्यधिक बल दे दिया जाता है, पर व्यक्ति के लिए उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक पर्याप्त सामाजिक या संस्थागत प्रणालियों का नितान्त अभाव उस सामाजिक संरचना में होता है। उदाहरणार्थ, सांस्कृतिक मूल्य हमारे सम्मुख यह आदर्श प्रस्तुत करता है कि अपनी योग्यता और प्रयत्नों के द्वारा व्यक्ति के लिए किसी भी उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है—वह लखपति बन सकता है, राष्ट्रपति हो सकता है या संसार की सबसे सुन्दर युवती को अपनी पत्नी के रूप में पा सकता है। परन्तु इन स्थितियों को प्राप्त करने के उचित और स्वीकृत साधन या प्रणालियाँ उसे अपने समाज में देखने को नहीं मिलती हैं। इसके विपरीत वह यह देखता है कि समाज के अयोग्य सदस्य सिफारिश या पार्टी के बल पर सर्वोच्च पदों पर आसीन हैं और वास्तविक योग्य व्यक्तियों के लिए खाने तक का भी ठिकाना नहीं है और कष्टों से तंग आकर अन्त में उन्हें आत्महत्या करनी पड़ती है; तो वह व्यक्ति भी समाज की आशाओं पर धूल झोंकता है, समाज के आदर्श-नियमों का उल्लंघन करना ही जीवन का आदर्श समझता है, चोरी करता है, डाका डालता है और जालसाजी या गबन करता है। यही उसके आचरण की असंगति या नियमहीनता बन जाती है परन्तु इसका कारण सामाजिक संरचना में ही निहित होती है।

एक सामाजिक संरचना के अन्तर्गत सदस्यों के लिए कुछ निश्चित पदों तथा कार्यों की व्यवस्था होती है। परन्तु जब किसी समाज में प्रमुख पदों से सम्बन्धित कार्यों की कोई निश्चितता नहीं होती तब भी व्यक्ति के व्यवहार में असंगति या नियमहीनता पनप सकती है। उदाहरणार्थ, आज की भारतीय पत्नी यह निश्चयपूर्वक नहीं जानती है कि पत्नी के पद से सम्बन्धित वास्तविक कार्य क्या हैं ? स्थिति यह है कि परिवार

और सास-ससुर यह चाहते हैं कि वधू एक आदर्श गृहिणी बने; बच्चों के हितों को अगर देखा जाए तो उसे एक आदर्श माँ बनना चाहिए; समाज की माँग यह है कि वह महिला एक आदर्श नारी बनकर सामाजिक प्रगति में हाथ बँटाए और पति यह चाहता है कि उसकी पत्नी एक रोचक जीवन-संगिनी की भूमिका को निभा सके। इनमें से कुछ ऐसी भूमिकाएँ हैं जो परस्पर विरोधी हैं। कुछ स्त्रियाँ इन विरोधी भूमिकाओं में एक समन्वय व सामंजस्य स्थापित करने में सफल होती हैं, परन्तु जो ऐसा नहीं कर पाती हैं उनके व्यवहारों व आचरणों में असंगतियाँ प्रकट होती हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि व्यक्ति जानबूझकर सामाजिक आदेशों या नियमों का उल्लंधन करता है। अधिकतर व्यक्ति यह चाहते हैं कि वे समूह के आदर्शों व मूल्यों के अनुरूप ही बने रहें और उनसे आशा किए जाने वाले कार्यों या भूमिकाओं को नियमानुसार निभाते चलें। परन्तु सामाजिक संरचना की वर्तमान परिस्थितियों की माँग जब संस्थागत माँगों के बिल्कुल ही विपरीत होती है तो व्यक्ति अनुरूपता या सामंजस्य उत्पन्न करने में असफल होता है। उन्हें वर्तमान सामाजिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने जीवन व आचरण को ढालना पड़ता है, चाहे उन्हें सामाजिक या संस्थागत मान्यता प्राप्त हो या न हो। ऐसी परिस्थिति में भी व्यक्ति के व्यवहारों में असंगति उत्पन्न हो सकती है जिसके फलस्वरूप वैयक्तिक विघटन हो सकता है। इस प्रकार विघटित व्यक्तित्व की संख्या जब समाज में अधिक हो जाती है तो सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है।

आधुनिक जटिल सामाजिक संरचना में कई अनेक पद ऐसे भी होते हैं जिनसे सम्बन्धित कार्य वर्तमान स्थिति में असंगत प्रतीत होते हैं। ऐसे अनेक पुराने कार्यों को अब भी करने को कहा जाता है जोकि पुराने जमाने को देखते हुए संगत कहे जा सकते थे क्योंकि उस समय सामाजिक संरचना भी उसी के अनुरूप सरल व सादा थी। पर आज की जटिल सामाजिक संरचना के अन्तर्गत उनकी संगति को ढूँढ़ना व्यक्ति के लिए कठिन ही प्रतीत होता है। उधर नई परिस्थितियाँ व्यक्ति पर निरन्तर दबाव डालती हैं कि वह किसी-न-किसी कार्य को चुन ले। परन्तु व्यक्ति यह निश्चय नहीं कर पाता है कि उसके कार्य-सम्बन्धी चुनाव को समाज पसन्द करेगा या नहीं और अपने समूह से उसे आशानुरूप सहयोग व सहायता प्राप्त भी हो सकेगी या नहीं। यह परिस्थिति सामाजिक सम्बन्धों में गहरी तथा व्यापक असुरक्षा उत्पन्न करती है जिसके कारण व्यक्ति में असन्तोष और निराशा की भावनाएँ पनपती हैं जो आज तक उसके आचरणों या व्यवहारों में असंगति व नियमहीनता उत्पन्न कर सकती हैं।